|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 8: अक्षरब्रह्मयोग

2/3 (श्लोक 9-16), शनिवार, 22 फ़रवरी 2025

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/2v_DyJ71-dU

अनन्य भक्ति ही है मार्ग, खोले परम धाम के द्वार

सनातन की दैवीय परम्पराओं का निर्वाह करते हुए आज के पावन विवेचन सत्र का शुभारम्भ मङ्गल प्रार्थना, दीप प्रज्वलन, माँ सरस्वती, भगवान वेद व्यास जी, ज्ञानेश्वरजी महाराज तथा परम पूज्य स्वामी गोविन्ददेव गिरिजी महाराज के चरणों में श्रद्धापूर्वक कोटि-कोटि नमन करते हुए किया गया।

श्रीमद्भगवद्गीता ऐसा अनुपमेय गीत है जो श्रीभगवान् ने प्रत्यक्ष समराङ्गण में गाया। किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन को कर्त्तव्य पथ पर पुनः लाने के लिए श्रीभगवान् के मुखारविन्द से प्रवाहित यह शाश्वत ज्ञान धारा पाँच हज़ार वर्ष पूर्व कही गई थी परन्तु आज भी हमारे मन को वैसे ही आनन्दित कर देती है। यह एक मनोवैज्ञानिक ग्रन्थ है जिसमें श्रीभगवान् ने अलभ्य ब्रह्म रहस्य को अर्जुन के माध्यम से प्रत्येक जीव मात्र के उद्धार के लिए अनावृत किया।

ज्ञानेश्वरजी महाराज ने भी ज्ञानेश्वरी में श्रीमद्भगवद्गीता का महात्म्य दर्शाते हुए कहा कि श्रीभगवान् ने गुरु प्रसाद के रूप में यह ज्ञान बहाया है ताकि इसका अमृत जन मानस तक पहुँचे। आर्त हृदय पर शान्ति की बौछार करने के लिए, अशान्त जीव को निर्वाण के पथ पर पहुँचाने के लिए गीताजी का ज्ञान ज्ञानेश्वरी के रूप में, मैं प्रवाहित कर रहा हूँ और उनके मुखारविन्द से एक सुन्दर ओवी प्रस्फुटित होती है -

तैसा वाग्विलास विस्तारु। गीतार्थे विश्वभरु।
आनंदाचे आवारुं। मांडू जगा।।

वे कहते हैं कि, मैंने अपनी वाणी का विस्तार इसलिए किया जिससे कि श्रीमद्भगवद्गीता के अर्थ से सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित हो जाए और सभी के जीवन की आनन्द यात्रा प्रारम्भ हो सके।

श्रीभगवान् इस अध्याय में, अर्जुन से संवाद करते हुए उनके प्रश्नों का निराकरण करने हेतु उनके सात प्रश्नों का उत्तर देते हैं।

अर्जुन श्रीभगवान् से पूछते हैं कि -
ब्रह्म क्या है?
अध्यात्म क्या है?

कर्म क्या है?
अधिभूत क्या है?
अधिदैव किसे कहते हैं?
अधियज्ञ कौन है?
प्रयाण काल में किस प्रकार से जो युक्तचित्त है, जिसने स्वयं पर नियन्त्रण किया, ऐसा योगी व्यक्ति आपको कैसे जानता है?

श्रीभगवान् के पहले छह प्रश्नों का उत्तर हमने पिछले सत्र में समझा। सातवाँ प्रश्न - अन्त समय में मनुष्य की बुद्धि कैसे स्थिर रहे और किस प्रकार से वह उस परमात्मा का चिन्तन करता रहे? यह हम आज जानेंगे।
प्रत्येक मानव जीव का अन्तिम क्षण अति महत्त्वपूर्ण क्षण होता है।

पिछले सत्र में हमने जाना कि श्रीमद्भगवद्गीता **is art of living in the world and also art of leaving the world.** यह जीवन केवल देह रूप में जीने का साधन नहीं है अपितु आत्म रूप में जीवन जीना ही इस जीवन को श्रेयस्कर बनाता है। श्रीमद्भगवद्गीता का नियमित पठन करने से, उसके अर्थ को समझने से हमारे चिन्तन को सही दिशा प्राप्त होती है। इस यात्रा के आरम्भ से पूर्व यह भी अनिवार्य है कि मनुष्य भय से मुक्त हो जाये। मनुष्य जीवन का सर्वोपरि भय, देह त्यागने का भय होता है, फिर अपने परिवार से बिछुड़ने का भय इत्यादि?

इस सन्दर्भ में मराठी कवि विंदा करन्दिकर के काव्य की अति सुन्दर पंक्तियाँ -

अखेरच्या वळणावर यावा
मंद सुगंधी असा फुलोरा
थकले पाऊल सहज उठावे
आणि सरावा प्रवास सारा

कर्त्तव्य कर्म करते हुए जीवन जीना, कि अन्तिम क्षण इतना सुगन्धित हो जाये कि सहजता से यह जीवन छोड़ दें। ऐसा ही जीवन सर्वोपरि, परिपूर्ण जीवन कहलाता है। योगियों का जीवन इस प्रकार का होता है।

श्रीभगवान् कहते हैं-

यं(म्) यं(म्) वापि स्मरन्भावं(न्), त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं(न्) तमेवैति कौन्तेय, सदा तद्भावभावितः ॥ 8.6॥

जिस वस्तु का स्मरण करते हुए मनुष्य अपनी देह को त्यागता है, उसे पाने के लिए वह पुनः जन्म लेता है। अन्तिम चिन्तन, ध्यान की अति विशिष्ट महत्ता है। साधक संजीवनी में एक रोचक तुलना की गयी है, चित्र खींचते समय यदि नाक पर मक्खी बैठ जाये तो हम कैसे दिखेंगें? इस अन्तिम क्षण की महत्ता को स्वीकार कर जो सन्त, ज्ञानी, तपस्वी मनुष्य अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे ईश्वर की नित्य आराधना में डूबे रहते हैं।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु, मामनुस्मर युध्य च ।
मय्यर्पितमनोबुद्धि:(र्), मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ 8.7॥

श्रीभगवान् अर्जुन के मन में उत्पन्न सन्देह का निवारण करते हुए कहते हैं कि, कौन जानता है कि कब किसका अन्तिम समय आयेगा? अतः यह आदत डाल लो, प्रति क्षण ईश्वर का स्मरण होता रहे।

गुरुदेवजी भी कहते हैं कि ऐसे जीवन का पालन हो कि जीवन सङ्ग्राम और भक्ति दोनों लयबद्ध हो जायें। इस जीवन के कर्तव्यों को भली-भाँति निभाते हुए, परिवार, व्यवसाय, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करते हुए, ईश्वर में भी

अपना मन और बुद्धि समर्पित कर देना। स्वयं को सदैव जाँचते-परखते रहना कि मेरा मन तो उसके स्मरण में है, उनके अनुसन्धान में बना हुआ है कि नहीं?

मन और बुद्धि विपरीत दिशा में भी चलते हैं।

अर्जुन समत्व चित्ताचे। ते चि सार जाणे योगाचे।
जे थे मन अणु बुद्धी ते ऐक्य आधी ।।

मन भावनाओं से ग्रस्त रहता है, परन्तु बुद्धि विवेक और तर्क का प्रतीक होती है। ज्ञानेश्वरजी महाराज कहते हैं मन और बुद्धि को एक साथ चलना चाहिए, एक दूसरे के विरुद्ध नहीं।

चित्त का समत्त्व ही योग का सार है। मन एवं बुद्धि का जब समन्वय हो जाये, दोनों एक रूप हो जाएँ, हृदय में प्रेम तथा मस्तिष्क में ज्ञान की वृद्धि हो जाये तब जीवन रुपी सङ्ग्राम में भक्ति और कर्म पृथक नहीं रहते। भक्ति और कर्म एकसाथ जुड़ जाते हैं।

गुरुदेव जी इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं - मन श्रीभगवान् में और शरीर कर्म में, प्रकृति द्वारा दिए गए शरीर को प्रकृति की सेवा में लगा दें एवम् मन परमात्मा को अर्पित कर दें।

अर्जुन के मन में दुविधा है कि युद्ध के मध्य में वे अपना ध्यान श्रीभगवान् में लगायें कि युद्ध में शत्रु को पराजित करने के लिए चौकस रहें। साधक सञ्जीवनी में इस विषय पर एक सुन्दर उदाहरण है। जिस प्रकार बीमा करने पर किसी वस्तु के टूटने का कोई भय नहीं रहता, उसी प्रकार मन और बुद्धि परमात्मा में जब लग जाये तो जीवन के उतार-चढ़ाव से मन व्यथित नहीं होता।

ज्ञानेश्वरजी महाराज कहते हैं-

तूं मनबुद्धि साचेंसीं, जरी माझिया स्वरूपीं अर्पिसी।
तरी मातेंचि गा पावसी, हे माझी भाक ॥ ७९॥

श्रीभगवान् ने शपथ लेकर यह बात कही थी कि इस तथ्य में यदि कुछ संशय है तो करके देखो, बिना प्रयोग में लाये प्रश्नों का समाधान कैसे प्राप्त हो सकता है?

अन्य उदाहरण अगर लें कि कोई चिकित्सक ऑपेरशन कक्ष में कोई अति संवेदनशील शल्यक्रिया कर रहा है और वह बीच-बीच में श्रीभगवान् का स्मरण करता है तो निश्चय ही उसे उस कार्य में सफलता प्राप्त होती है और ऐसे अनगिनित उदाहरण हैं जहाँ चिकित्सकों ने ऐसे अनुभव साँझा किये हैं।

श्रीभगवान् आठवें श्लोक में कहते हैं -

अभ्यासयोगयुक्तेन, चेतसा नान्यगामिना ।
परमं (म्) पुरुषं (न्) दिव्यं (म्), याति पार्थानुचिन्तयन् ॥ 8.8॥

बिखरी हुई चेतना को बीच-बीच में बटोरना। चित्त अपनी वृत्ति के अनुकूल बारम्बार इधर-उधर भटकता है परन्तु यदि हम उसे बार-बार सही दिशा की ओर लाने का प्रयास करते रहेंगे तो इस प्रयास में सफल हो जायेंगे। मन पर ध्यान केन्द्रित रख उसकी गतिविधियों के प्रति चौकन्ना रहने की आवश्यकता है। मेरा मन क्या सोच रहा है? क्या उसमें नकारात्मक विचार उठ रहे हैं? किसी के द्वारा की गयी निन्दा का विचार कर रहा है या परमात्मा की स्तुति में आनन्दित हो झूम रहा है? मन की विशेषता है कि वह अपनी सङ्गत के गुण ग्रहण कर लेता है।

पानी रे पानी तेरा रङ्ग कैसा, जिस में मिला दो लगे उस जैसा।

मन अनेकों बार अपने मार्ग से विचलित होगा परन्तु हमें एक ममतामयी माँ की भाँति, जो अपने अबोध बालक को भोजन खिलाने के लिए उसके पीछे-पीछे भागते हुए अनेक प्रयासों द्वारा एक एक निवाला उसके मुँह में डालती जाती है, ठीक उसी प्रकार इस भटकने वाले मन को बार-बार अन्य पथ पर गमन से बचाते हुए परम, दिव्य पुरुष के चिन्तन की ओर अग्रसर करते रहना है।

परमात्मा के स्वरूप का चिन्तन करने हेतु सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार के तथ्य को भी जानना होगा। सनातन धर्म में उस निराकार परमात्मा को ही हम मूर्ति पूजा में देखते हैं। मेरे सामने श्रीराम का विग्रह है या श्रीकृष्ण का, वह परमात्मा का ही स्वरूप है, यदि इस भाव से मैं नतमस्तक हो, आराधना करती हूँ तो वह निराकार परब्रह्म परमात्मा उस साकार रूप में समाहित हो जाता है। यही ज्ञान हमारे सन्त, महात्मा निरन्तर हमें प्रदान करते हैं।

8.9

कविं(म्) पुराणमनुशासितारम्,
अणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपम्,
आदित्यवर्णं (न्) तमसः (फ्) परस्तात्॥ 8.9॥

जो सर्वज्ञ, अनादि, सब पर शासन करने वाला, सूक्ष्म से अत्यन्त सूक्ष्म, सबका धारण-पोषण करने वाला, अज्ञान से अत्यन्त परे, सूर्य की तरह प्रकाशस्वरूप अर्थात् ज्ञानस्वरूप ऐसे अचिन्त्य स्वरूप का चिंतन करता है।

विवेचन - इस श्लोक में श्रीभगवान् ने अर्जुन के सामने उस सर्वोपरि परब्रह्म परमात्मा का वर्णन किया है जो इस सम्पूर्ण सृष्टि का भरण-पोषण करने वाले हैं। इस परिवर्तनशील संसार के विषयों में उलझ कर जिस शाश्वत बन्धन को हमने विस्मृत कर दिया, उन परमात्मा का पुनः चिन्तन अनिवार्य है।

.

पुराणमनुशासितारम् - जो सर्वज्ञ है और सर्वोपरि ज्ञान से परिपूर्ण है। जो सनातन है, जिसके आदि, मध्य, अन्त का भास नहीं, परन्तु उससे हमारा गूढ़ सम्बन्ध है, उसे हम स्वसंवेदना द्वारा जान सकते हैं। उस प्राचीन सत्य की खोज हमारी बुद्धि और चिन्तन के परे है।

ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं -

ॐ नमो जी आद्या। वेद प्रतिपाद्या। जय जय स्वसंवेद्या। आत्मरूपा ॥१॥
आत्मरूप को नमन कर, इस मन्त्र से ज्ञानेश्वरी का शुभारम्भ किया।

श्रीमद्भगवद्गीता हमें उस मार्ग पर अग्रसर करती है जहाँ हमारा विधाता से मिलाप हो जाये। समस्त सृष्टि भी नियमों का अनुसरण करती है। प्रकृति का नियन्ता कौन है? जिसने सभी ग्रहों को अपनी-अपनी कक्षाओं में परिक्रमा करने के लिए नियन्त्रित किया है। जिस धरती पर हम वास करते हैं वह भी तो अपने सूर्य के इर्दगिर्द तीन सौ पैंसठ दिन में एक परिक्रमा पूर्ण करती है और चौबीस घण्टों में स्वयं अपनी धुरी पर घूम जाती है। वेदों में सम्पूर्ण सृष्टि का संविधान है, उसका रचयिता कौन है? किसके द्वारा यह नियम बनाये गए और कौन इनका निरीक्षण करता है?

क्या धरा हमने बनाई या बुना हमने गगन।

क्या हमारी ही वजह से बह रही सुरभित पवन।

या अगन के हम हैं स्वामी नियन्ता जगधार के।

या जगत के सूत्रधारक नियामक संसार के।

न धरती हमने बनाई, न ही फूल पौधे, जीव जन्तु, तो कौन चित्रकार है? क्या उससे भेंट सम्भव है?

अणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः- सर्वोपरि परब्रह्म परमात्मा अणु, परमाणु से भी सूक्ष्म हैं और इसी कारण वे सभी चराचर में, कण-कण में समाहित हैं।
वायु अपनी सूक्ष्मता के कारण ही सर्वत्र व्याप्त है। पानी जब भाप बनता है तो चहुँ ओर व्याप्त हो जाता है और वही जल बर्फ़ के रूप में अपनी व्यापकता खो बैठता है।

सर्वस्य धातारम् - जो सभी को धारण किये हुए है। धरती अपने गुरुत्वाकर्षण से सभी को धारण करती है, पृथ्वी को सूर्य देवता ने धारण किया है और सूर्यदेव स्वयं सभी ग्रह गोलों के साथ एक केन्द्र की परिक्रमा लगा रहे हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड नायक ही सभी का आधार भूत है।

एकमेवाद्वितीयं- जैसे अङ्क एक के पश्चात् शून्य जोड़ देने से उसका मूल्य बढ़ता जाता है, परन्तु जब अङ्क एक को निकाल दें, तो शून्य का कोई मोल नहीं।

अचिन्त्यरूपम् - अति सूक्ष्म का चिन्तन सम्भव नहीं, देह धारियों के लिए मूर्ति पूजन अधिक सहज है। मूर्ति रूप में उस निराकार को देख पाते हैं।

क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम्, अव्यक्तासक्तचेतसाम्|
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं(न्), देहवद्भिरवाप्यते||5||

ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं - **तैसा म्यां देखिला निराकार वो माये,** मैंने आँखों से निराकार को भी देख लिया।

आदित्यवर्णं - सूर्य के समान, अत्यन्त तेजस्वी उसका वर्ण है।

तमसः परस्तात - अविद्या, अज्ञान, अन्धकार से परे है।

स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन का प्रसङ्ग है। वे भी अनेक युवाओं की भाँति रूढ़िवादी परम्पराओं से खिन्न होकर निराकार में चित्त लगाने लगे पर गुरु रामकृष्ण ठाकुर की शरण में आकर उन्हें सगुण व निर्गुण की पारस्परिक लयबद्धता का ज्ञान हुआ। एक बार वे अलवर नरेश के महल में पधारे। अलवर नरेश ने उनसे पूछा कि वे इतने ज्ञानी होकर, देश-विदेश की यात्राएँ करके भी मूर्ति पूजन में विश्वास रखते हैं। स्वामीजी ने उनके दीवान से दीवार पर लगी हुई नरेश के पिताजी के चित्र पर थूकने का आग्रह किया। दीवानजी यह सुनकर सकपकाये। नरेश बोले इस चित्र में मेरे पिता हैं, तो स्वामी विवेकानन्द ने कहा, चित्र में आप अपने पिता की अनुभूति कर सकते हैं तो उस अनन्त कोटि, ब्रह्माण्ड नायक, एकमेवाद्वितीयं परब्रह्म को हम भी उस मूर्ति में अनुभूत करते हुए उनकी आराधना करते हैं।

ज्ञानेश्वर जी महाराज कहते हैं -

जयाचें आकारावीण असणें, जया जन्म ना निमणें।
जें आघवेंचि आघवेपणें, देखत असे ॥ ८६॥

आकार नहीं है पर वह व्यापकता से सभी का दर्शन ले रहा है, सभी को देख रहा है।

जा गगना हुणे ज़ने, परमाणु हुण साणे, ज्याच्या सानी ध्याने विश्व चळै।

परमाणु से छोटा है परन्तु सम्पूर्ण शक्ति का स्रोत है, जिसके सान्निध्य से विश्व चलायमान है। जिस प्रकार चुम्बक के सान्निध्य में लोह तत्त्व चलायमान हो जाता है, उसी प्रकार इस ब्रह्म रूप के सान्निध्य से सम्पूर्ण विश्व चलायमान होता है। जो विश्व का शास्ता है, नियन्ता है, उसे हम साकार रूप में अनुभूत कर उसका चिन्तन कर सकते हैं, **अचिन्त्यरूपम्** होते हुए भी।

8.10, 8.11

प्रयाणकाले मनसाऽचलेन,
भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव ।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्,
स तं(म्) परं(म्) पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ 8.10॥
यदक्षरं(म्) वेदविदो वदन्ति,
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं(ञ्) चरन्ति,
तत्ते पदं(म्) सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ 8.11॥

वह भक्तियुक्त मनुष्य अन्त समय में अचल मन से और योग बल के द्वारा भृकुटी के मध्य में प्राणों को अच्छी तरह से प्रविष्ट करके (शरीर छोड़ने पर) उस परम दिव्य पुरुष को ही प्राप्त होता है।
वेदवेत्ता लोग जिसको अक्षर कहते हैं, वीतराग यति जिसको प्राप्त करते हैं (और) (साधक) जिसकी (प्राप्ति की) इच्छा करते हुए, ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वह पद (मैं) तेरे लिए संक्षेप में कहूँगा।

विवेचन - जो मनुष्य निरन्तर अपना मन, शरीर, बुद्धि, चित्त एवं प्राण सदैव उस परब्रह्म के चिन्तन में समर्पित कर देते हैं वे अपने प्रयाणकाल के समय अपने योग बल के माध्यम से दोनों भ्रुवों के मध्य अपने प्राण, साँस व चेतना को स्थापित कर सकते हैं। ऐसे सक्षम योगी परम दिव्य पुरुष को प्राप्त कर लेते हैं ।

भक्ति - अविरल प्रेम की धारा। जिस प्रकार परिवार के सदस्यों तथा इष्ट मित्रों के प्रति हमारा प्रेम भाव है, परन्तु जब यह धारा परमात्मा से एकाकार हो जाये, वह भक्ति का रूप धारण कर लेती है।

मनसाऽचलेन - ज्ञानेश्वरजी महाराज ने तो अपनी आयु के बाईसवें वर्ष में सजीवन समाधि ग्रहण की थी। श्रीमद्भगवद्गीता के नवम् अध्याय को अपने समक्ष रख, उस दिव्य स्थिति को प्राप्त किया था। क्या यह योग की सर्वोपरि स्थिति नहीं है?

यदक्षरं(म्) वेदविदो वदन्ति - किसे स्मरण करते हुए यह आत्मा अपने अन्तिम क्षणों में देह त्यागती है। वेदों के ज्ञाता, वैदिक आत्मा को अक्षर कहते हैं, अर्थात् जिसका क्षर नहीं होता।

विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः - ज्ञानी पुरुष जो वीत राग से परे हो गए, जिन्हें समत्त्व का बोध हो गया, वे भी उसी स्थिति को प्राप्त करना चाहते हैं।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं(ञ्) चरन्ति - उस परम पद की इच्छा रखते हुए, ब्रह्म की प्राप्ति के लिए अपने जीवन में आचरण रखने वाले।

तत्ते पदं(म्) सङ्ग्रहेण प्रवक्ष्ये - उस रहस्य को श्रीभगवान् स्वयं संक्षेप में अर्जुन को समझाते हैं। अर्जुन व्यथित हैं, वे अपने परिजनों की मृत्यु के भय से कम्पित हो रहे हैं। श्रीभगवान् उन्हें उन संन्यासियों के प्रयाणकाल का उत्सव दिखलाते हैं, जो मृत्यु के भय से विमुक्त होकर इस संसार को त्याग कर समाधिस्थ हो गए। समाराधना दिवस, ऐसी दिव्यात्माओं के परायण उत्सव के रूप में मनाया जाता है क्योंकि वे देह को त्याग कर, चैतन्य रूप में स्थापित हो गए।

ज्ञानेश्वरजी महाराज कहते हैं -

कां झांकलिय घटींचा दिवा, नेणिजे काय जाहला केव्हां।
या रीती जो पांडवा, देह ठेवी ॥ ९८॥

जब दीपक को जलाया जाये, पर उसकी लौ को किसी वस्तु से ढक दिया जाये, तो धीरे-धीरे वह लौ बुझ जाती है, इसी प्रकार सिद्ध पुरुष बिना किसी छटपटाहट के अपने प्राणों को भ्रू मध्य में एकाग्र करते हुए देह छोड़ते हैं और उस परम पद को प्राप्त कर लेते हैं।

8.12, 8.13

सर्वद्वाराणि संयम्य, मनो हृदि निरुध्य च ।
मूर्ध्न्याधायात्मनः(फ्) प्राणम्, आस्थितो योगधारणाम् ॥ 8.12॥
ओमित्येकाक्षरं(म्) ब्रह्म, व्याहरन्मामनुस्मरन् ।
यः(फ्) प्रयाति त्यजन्देहं(म्), स याति परमां (ङ्) गतिम् ॥ 8.13॥

(इंद्रियों के) संपूर्ण द्वारों को रोक कर, मन का हृदय में निरोध करके और अपने प्राणों को मस्तक में स्थापित करके, योगधारणा में सम्यक् प्रकार से स्थित हुआ।
जो साधक 'ॐ' इस एक अक्षर ब्रह्म का (मानसिक) उच्चारण (और) मेरा स्मरण करता हुआ, शरीर को छोड़कर जाता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

विवेचन -

सर्वद्वाराणि संयम्य- श्रीभगवान् कहते हैं कि जिस योगी ने योगबल के ज्ञान से शरीर के नव द्वार- दो आँखें, दो नासिका मार्ग, दो कर्ण, एक मुख, एक उपस्थ और एक गुदा इन द्वारों को नियन्त्रित कर लिया है। इन द्वारों से ही हम सृष्टि के साथ सम्पर्क स्थापित करते हैं। चक्षु से देखा गया चित्र हमारे मानस पटल पर अङ्कित हो जाता है, कर्ण द्वारा सुनी गई ध्वनि, स्तुति हो या निन्दा, हमारे चित्त में घर कर लेती है, रसना द्वारा ग्रहण किया गया स्वाद भी हमारे चित्त पर लम्बी अवधि तक अङ्कित रह जाता है। ये सब हमारे चित्त का मैल हैं, जिन्हें हम संसार में रहते हुए निरन्तर ग्रहण करते हैं। यदि हम इन द्वारों पर नियन्त्रण रख लें, मन को हृदय, अनाहत चक्र में स्थिर कर लें। परम् पूज्य गुरुदेव जी ने इसे चक्र के माध्यम से समझाया है।

मनो हृदि निरुध्य च - षट चक्रों को समेटते हुए चेतना का विस्तार करते हुए प्राण को अनाहत में स्थापित करना।

गुरुदेव ने सन्त श्री गुलाबराव को जगत गुरु की उपाधि दी है, जिन्होंने सिद्ध किया कि ये चक्र हमारे अन्नमय कोष में नहीं अपितु मनोमय कोष में हैं, इसलिए शल्य चिकित्सक उसको प्रत्यक्ष रूप में शरीर में नहीं देख सकते।

हमारे षट्चक्र - मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार।

मूर्ध्न्याधायात्मनः(फ्) प्राणम्- फिर प्राण को वहाँ से धीरे धीरे मस्तक की ओर ले जाकर स्थापित करना।

योग में स्थित होकर जो व्यक्ति एकाक्षर ॐ का स्मरण करते हुए, उसका उच्चारण करते हुए चिन्तन में लगे रहते हैं, **तस्य वाचक : प्रणव**।

ज्ञानेश्वरजी महाराज इसे बड़े सुन्दर और सरल भाव से समझाते हैं - किसी बालक का यदि नाम लें तो वह तुरन्त ही पास आ जाता है, उसी प्रकार इस ब्रह्म ध्वनि के द्वारा हम ईश्वर से जुड़ सकते हैं। सब नाम ऊँकार में विलीन हो जाते हैं और अन्ततोगत्वा

ऊँकार नाद में विलीन हो जाता है।

परम् पूज्य गुरुदेव जी ने भी समझाया है कि जीवात्मा मनुष्य शरीर में नाद के रूप में एक तरङ्ग के समान स्थापित है। जो ऊँकार का स्मरण करते हुए देह को त्यागता है, वह उस परम गति को प्राप्त कर लेता है।

अर्जुन के मन में कई विचार उमड़ रहे हैं। वे युद्ध क्षेत्र में किस प्रकार अपने चैतन्य को एकाग्र कर सकते हैं?

ज्ञानेश्वरजी महाराज कहते कि जो नियमित रूप से ईश्वर पूजन करते हैं और अपने मन को श्रीभगवान् में लगाते हैं उन्हें यह सब करने की आवशयकता नहीं रहती। श्रीभगवान् ऐसे व्यक्ति के अन्तकाल के समय स्वयं ही शीघ्रता से पहुँच जाते हैं क्योंकि उन्हें ज्ञात है कि इस व्यक्ति ने आजन्म मेरी आराधना की है।

तुकारामजी महाराज अत्यन्त मनोहारी ढंग से यह मनोभाव प्रकट करते हैं -

भक्ती ऋण घेतले माझे । चरण गहाण आहेत तुझे ॥ प्रेम व्याज देई हरी । माझा हिशेब लवकर करी।

यह भक्ति का परमात्मा पर ऋण हो जाता है। भक्त ईश्वर से कहता है, मैंने आपके चरण रख लिए हैं, आप मेरी भक्ति का ऋण अपने प्रेम से चुका दीजिये, मैं वैश्य हूँ, गणित का लेखा-जोखा रखता हूँ।

ज्ञानेश्वरजी महाराज कहते हैं-

तिरुणवे पण देखो नयांगी आपुल याची उत्तीर्णवा लागि भक्ताचियात तनु त्यागी परिचर्या करि।

श्रीभगवान् के भक्त से प्रेम का अति भावुक वर्णन करते हुए समझाते हैं कि जब श्रीभगवान् के अनन्य भक्त का अन्त समय आता है तो वे स्वयं उसकी सेवा के लिए पधारते हैं क्योंकि जिस भक्त ने उनका जीवन भर स्मरण किया, वह अन्तिम क्षणों में बिस्तर पर हो सकता है, रोग से ग्रस्त हो सकता है, कराहता भी होगा। श्रीभगवान् उसकी भक्ति का ऋण चुकाने आते है क्योंकि वे स्वयं अच्छे अङ्कों से उत्तीर्ण होना चाहते हैं। उस भक्त की भक्ति और प्रेम का ऋण वे अवश्य चुकाते हैं। अन्त समय में उसकी सेवा करते हैं, उसके निकट ही रहते हैं और उसका दुःख हर लेते हैं।

8.14

अनन्यचेताः(स्) सततं(म्), यो मां(म्) स्मरति नित्यशः ।
तस्याहं(म्) सुलभः(फ्) पार्थ, नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ 8.14॥

हे पृथानन्दन! अनन्य चित्तवाला जो मनुष्य मेरा नित्य निरंतर स्मरण करता है, उस नित्य निरंतर मुझ में लगे हुए योगी के लिए मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसको सुलभता से प्राप्त हो जाता हूँ।

विवेचन - हे अर्जुन! ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र उपाय है कि उस परमात्मा का अनन्य चिन्तन किया जाये।

तस्याहं सुलभः(फ्) पार्थ, नित्ययुक्तस्य योगिनः - जो नित्य ईश्वर का चिन्तन करता है उसके लिए श्रीभगवान् की प्राप्ति सुलभ है। श्रीभगवान् यहाँ स्वयं मानव जाति को उनसे जुड़ने का सहज उपाय बता रहे हैं। ईश्वर को प्राप्त करना दुष्कर है, कठिन तप, श्रम, कठिन ग्रन्थों को पढ़कर ही ईश्वर दर्शन होंगें, इन सभी बातों को नकारते हुए श्रीभगवान् अत्यन्त सहज पथ प्रदर्शन कर रहे हैं।

यद्यपि श्रीभगवान् ने अन्य स्थानों पर निम्नलिखित कथन भी कहे, पर इस श्लोक में वे स्पष्ट रूप से नित्य उपासना करने वाले परम भक्त की भक्ति से प्रसन्न होकर उसके मानव जीवन को सार्थक करने हेतु अपने परम धाम तक पहुँचने का उपाय साझा

कर रहे हैं।

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।।7.19।।
अनेक जन्म संसिद्ध ततः यति यात परां गतिम् ॥6.45 ||

अनन्यचेताः(स्)- जिसके जैसा अन्य नहीं। जिस आकार में, मैं परमात्मा को देखता हूँ, उनकी आराधना करता हूँ, वे मेरे एकमेवाद्वितीयं कृष्ण गोपाल के रूप में, मुरली मनोहर के रूप में, धनुर्धारी श्रीराम के रूप में, देवी माँ के रूप में या और अन्य किसी देवता के रूप में भी हो सकते हैं।
इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि मैं अन्य किसी का चिन्तन नहीं करूँ, अर्थात् अन्य भोग, अन्य उपलब्धियाँ, अन्य पद प्रतिष्ठा, अन्य वासनाओं का भोग नहीं करूँ, परमात्मा से मिलन ही मेरा एकमात्र लक्ष्य होना चाहिए।

परम पूज्य गुरुदेवजी कहते हैं कि परमात्मा के लिए यह चित्त की उड़ान भरनी है। यह चित्त जो वासनाओं की मेल में कलुषित हो गया है, उस चित्त को ऊपर उठाना है। जैसे एक बालक माँ के अथाह प्रेम के कारण केवल उसकी चाह रखता है, खिलौनों की नहीं। माँ जब उसे गोदी में ले लेती है तो उसे हर सुख प्राप्त हो जाता है। भक्त के ह्रदय की आर्त पुकार सुन परमात्मा स्वयं आते हैं, केवल एक माँग है कि वासनाओं के बोझ से विमुक्त होकर ईश्वर में मन रमा लो। ठीक उसी प्रकार, जैसे रॉकेट को अन्तरिक्ष के कक्ष में पहुँचाने के लिए अधिक बोझ धीरे-धीरे कम किया जाता है।

गुरुदेव आगे कहते हैं कि प्रामाणिकता से अपना जीवन जीना चाहिए। केवल अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए हर सम्बन्धी, हर रिश्ते-नाते के प्रति अपना दायित्त्व पूर्ण करते हुए यह जीवन व्यतीत करना चाहिए। ईश्वर आपके प्रतिष्ठा पदों से प्रभावित नहीं होते, वे केवल आपके चित्त की शुद्धि पर ध्यान केन्द्रित रखते हैं, अतः वासनाओं के बोझ को त्याग कर अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति करते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए, यह **अनन्य** की एक और परिभाषा है।

8.15

मामुपेत्य पुनर्जन्म, दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः(स्), संसिद्धिं(म्) परमां(ङ्) गताः॥ 8.15॥

महात्मा लोग मुझे प्राप्त करके दुःखालय अर्थात् दुःखों के घर (और) अशाश्वत अर्थात् निरंतर बदलने वाले पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते; (क्योंकि वे) परम सिद्धि को प्राप्त हो गए हैं अर्थात् उनको परम प्रेम की प्राप्ति हो गई है।

विवेचन - धारा नीचे की ओर बहती है, धारा को राधा बनाना है। परमात्मा को राधा प्रिय हैं, क्योंकि वे ऊर्ध्वगामी चेतना हैं। जिसने अपनी चेतना को उजागर कर लिया वे परमात्मा को प्राप्त कर लेते हैं।
इस संसार को श्रीभगवान् ने दुःखालय और अशाश्वत कहा है। मनुष्य ने अपनी निरंकुश वासनाओं, अपने धर्म का पालन न करने, अपने पक्ष अथवा राष्ट्र की सीमाओं की मर्यादा का उल्लङ्घन कर, ऐसे अनेकानेक कारणों से इस संसार को दुःख का घर बना दिया है। परमात्मा की सृष्टि दुःख देने के प्रयोजन से नहीं सजाई गयी थी।

ये कौन चित्रकार है,ये कौन चित्रकार है,
तपस्वियों सी हैं अटल ये पर्वतों की चोटियाँ
ये सर्प सी घुमेरदार घेरदार घाटियाँ,
ध्वजा से ये खड़े हुए है वृक्ष देवदार के,
गलीचे ये गुलाब के,बगीचे ये बहार के,
ये किस कवी की कल्पना का चमत्कार है,
ये कौन चित्रकार है...

इस सुन्दर सृष्टि के विध्वंस का कारण मनुष्य का असीम लालच है।

सभी योगी ध्रुव पद, जो परम पद है, प्राप्त करना चाहते हैं, जहाँ से मनुष्य इस क्लेश रूपी जीवन में पुनः लौटकर नहीं आता। वे यदि परमात्मा का कार्य करने हेतु धरती पर आयें तो दिव्य रूप में परमात्मा के अवतार के रूप में, सन्त महात्माओं के रूप में आते हैं और वासनाओं की चपेट में कदापि नहीं फँसते।

8.16

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः(फ्), पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय, पुनर्जन्म न विद्यते ॥ 8.16॥

हे अर्जुन! ब्रह्मलोक तक सभी लोक पुनरावृत्ति वाले हैं अर्थात् वहाँ जाने पर पुनः लौट कर संसार में आना पड़ता है; परंतु हे कौन्तेय! मुझे प्राप्त होने पर पुनर्जन्म नहीं होता

विवेचन - जीवात्मा की ब्रह्मलोक तक की यात्रा का यहाँ पर वर्णन है। जो भी ब्रह्मलोक तक पहुँचा उसे धरती पर पुनः आना पड़ेगा, परन्तु जिसने इस निराकार परब्रह्म को प्राप्त कर लिया वह पुनर्जन्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

इस पृथ्वी में मिलने वाले सुखों में - धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, निरोगी काया, परिवार की अनुकूलता इत्यादि सम्मिलित हैं। इससे सौ गुना अधिक देवता लोक का सुख होता है, उससे सौ गुना अधिक इन्द्र लोक का सुख होता है, उससे भी सौ गुना अधिक ब्रह्मलोक का सुख होता है और उससे भी अनन्त गुना अधिक सुख भगवद् प्राप्त भक्त या जीवन मुक्त योगी के भाग्य में आता है। इस सुख को प्राप्त करने की युक्ति अगले सप्ताह के विवेचन सत्र में समझेंगें।

इस सुमधुर प्रस्ताव के साथ आज का विवेचन सत्र पूर्ण हुआ और प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- पद्मिनी दीदी

प्रश्न- राम और कृष्ण दोनों ही पूर्ण अवतार मानते हैं?

उत्तर- श्रीकृष्ण को हम पूर्ण अवतार मानते हैं, क्योंकि राम चन्द्र जी ने भी मनुष्य रूप में जन्म लेकर देह की मर्यादा का पालन किया है, उन्होंने सभी मर्यादाओं का पालन करते हुए अपना मार्ग कैसे बनाया जाय यह बताया। उन्होंने सुदर्शन चक्र धारण न करके धनुष बाण से ही कैसे अपना मार्ग निष्कण्टक बनायें यह बताया, किन्तु श्रीकृष्ण भगवान ने सुदर्शन चक्र धारण किया। उन्होंने लीला करते हुये अपना वास्तविक विश्वरूप दिखाया, इसलिये उन्हें ही पूर्णावतार कहते है।

प्रश्नकर्ता- सुरेश्वर भैया

प्रश्न- ऊँ क्या है?

उत्तर- ऊँ एकाक्षरी परमात्मा का नाम है। इसमें तीन अक्षर आते हैं अ, उ, म और एक बिन्दु होता है, ये मिलकर एक अक्षर बनता है ऊँ। यह मिलकर परमात्मा का नाम क्यों हुआ, क्योंकि अकारको ब्रह्मा, उ कार को विष्णु, म् कारको महेश मानते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों ऊँ में समाहित हैं। ब्रह्मा जी निर्माता हैं, विष्णु जी पालनकर्ता हैं, महेश (शिव) जी संहारक हैं। चन्द्र बिन्दु तुरीयावस्था में है, जागृति, सुषुप्ति, स्वप्न, इन तीनों अवस्थाओं में जो है वह तुरीयावस्था में है। यह सब ऊँकार में है।

प्रश्नकर्ता- राजकुमार भैया

प्रश्न- श्रीमद्भगवद्गीता को कण्ठस्थ करने और हृदयस्थ करने में सूक्ष्म अन्तर क्या है? साधक को इस समय कैसा अनुभव होता है?

उत्तर- कण्ठस्थ होना यानि वाणी से उसका उच्चारण करना और कण्ठ में उसे विराजित करना। अभी मुझे देखने की आवश्यकता नहीं रहती, वे हमारे कण्ठ में स्थित होकर वाणी से चलते रहते हैं, किन्तु हमारा ध्यान अर्थ की ओर जाने लगता है, तो वह धीरे-धीरे हृदय में विराजित होने लगते है। धीरे-धीरे श्रीगीता जी अन्तर्मन में समाहित हो जाती हैं। श्रीगीता जी को मन्त्र नहीं कहा गया है। मन्त्र शब्द का अर्थ होता है बुलाना, मन्त्रणा करना, निमन्त्रण, आमन्त्रण इन शब्दों का प्रयोग परामर्श करने एवम् बुलाने के अर्थ में ही किया जाता है। इसी प्रकार हम मन्त्र से श्रीभगवान् को बुलाते है, यदि उनका ज्ञान हमें हो गया तो वे हृदयस्थ हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता- बजरंग भैया

प्रश्न- सीता जी ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम चन्द्र जी से विवाह किया, किन्तु वे भौतिक सुख नहीं प्राप्त नहीं कर सकीं, इसका क्या कारण है?

उत्तर- जब परमात्मा जन्म लेते है, तो सांसारिक लोगों का कष्ट दूर करना उनका उद्देश्य होता है। अपना भौतिक सुख प्राप्त करने का उद्देश्य उनके जन्म का कारण नहीं था। उद्देश्य पूर्ण करने के बाद वे स्वयम् भूमि में समाहित हो गईं। भौतिक सुख परिवर्तित होते रहते हैं, एसी गर्मी में शीतलता प्रदान करते हैं, किन्तु ठण्ड में उसकी आवश्यकता नहीं होती। ये सब शिक्षा देने के लिये ही इस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। माता सीता ने विभिन्न विषम परिस्थितियों में रहते हुये जिस प्रकार जीवन जिया हम उनसे शिक्षा लेते हुये दु:ख कष्टों में विचलित न होकर जीवन व्यतीत करें, यही प्रार्थना है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||